|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

**अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग**

1/2 (श्लोक 1-10), रविवार, 04 जनवरी 2026

**विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल**

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/2zwjMCA_TOs

# जीवन में श्रद्धा का महत्त्व

भारत माता गीत, गीता माता गीत, सुन्दर भजन, श्रीहनुमान चालीसा पाठ, पारम्परिक दीप-प्रज्वलन, श्रीगुरु चरण वन्दना एवं भगवान् श्रीकृष्ण का वन्दन करते हुए **सत्रहवें अध्याय श्रद्धात्रयविभागयोग** के पूर्वार्द्ध सत्र का विवेचन आरम्भ हुआ।

श्रीभगवान् की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हम लोगों का ऐसा सद्भाग्य जागृत हुआ कि हम अपने इस मानव जीवन को सार्थक करने के लिए, सफल करने के लिए, इसके परमोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए और अपने इहलोक और परलोक दोनों का कल्याण करने के लिए श्रीमद्भगवद्गीताजी के अध्ययन, चिन्तन, पठन-पाठन, स्वाध्याय में और कण्ठस्थ करके अपने जीवन में अपनाने के लिए प्रवृत्त हो गये हैं।

पता नहीं, हमारे इस जन्म के पुण्य कर्म हैं, पूर्व जन्मों के पुण्य कर्म हैं, हमारे पूर्वजों के कोई सुकृत हैं या फिर किसी जन्म में किसी सन्त-महापुरुष की कृपादृष्टि हमारे ऊपर पड़ गई, जिस कारण हम श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने के लिए चुन लिये गये हैं।

हमारे मन में परम विश्वास होना चाहिए कि हमने गीता जी को पढ़ने के लिए नहीं चुना अपितु हम गीता जी को पढ़ने के लिए चुने गए हैं। श्रीभगवान् की कृपा के कारण ही ऐसा हुआ है। जिस पर भगवान् की कृपा नहीं होती वह गीता को पढ़ने का इच्छुक भी नहीं होता और चाहकर भी गीताजी में प्रवृत्त नहीं होता।

यह श्रद्धा भाव यदि हम में होगा तो हमारा कल्याण सम्भव है।

सत्रहवाँ अध्याय, श्रद्धात्रयविभागयोग अत्यन्त विलक्षण है। यह तीन प्रकार की श्रद्धा को बताता है।

सोलहवें अध्याय के तेईसवें और चौबीसवें श्लोक में अचानक श्रीभगवान् ने नई बात कही और शास्त्रों की महिमा को प्रधानता दी।

श्रीभगवान् ने कहा-

**यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।**
**न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।। 16.23 ।।**

**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।**
**ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।। 16.24 ।।**

श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि यदि कोई शास्त्र विधि को त्यागकर मनमाना आचरण करता है तो उसे किसी प्रकार की सिद्धि, सुख प्राप्त नहीं होता और न ही परमगति प्राप्त होती है। उसका नाश अवश्यम्भावी है।
सभी कार्यों की सिद्धि के लिए शास्त्र ही प्रमाण हैं।

श्रीभगवान् ने नई बात कही तो अर्जुन के मन में द्वन्द्व उत्पन्न हो गया क्योंकि श्रीभगवान् तो श्रद्धा की बात करते हैं -

तीसरे अध्याय के इकत्तीसवें श्लोक में श्रीभगवान् ने कहा-
**श्रद्धावन्तोऽनासूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ।। 3.31 ।।**

चौथे अध्याय के उन्तालीसवें श्लोक में कहा-
**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।। 4.39 ।।**

छठे अध्याय के सैंतालीसवें श्लोक में कहा-
**श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ।। 6.47 ।।**

बारहवें में दो स्थान पर श्रद्धा का उपयोग किया।
बारहवें अध्याय के दूसरे श्लोक में कहा-
**श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्तात्मा माताः ।। 12.2 ।।**

बारहवें अध्याय के बीसवें श्लोक में कहा-
**श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।। 12.20 ।।**

इस प्रकार श्रीभगवान् ने पाँच स्थानों पर श्रद्धा की महिमा को बताया है।

चौथे अध्याय के चालीसवें श्लोक में श्रीभगवान् ने कहा-
**अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।। 4.40 ।।**
**जो श्रद्धा नहीं रखता उसका नाश निश्चित है।**

श्रीभगवान् ने श्रद्धा और शास्त्र की बात की। अर्जुन के मन में प्रश्न आया कि यदि कोई शास्त्रों का पालन नहीं करता किन्तु श्रद्धावान है तो उसकी स्थिति कैसी होगी?

**17.1**

## अर्जुन उवाच
## ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य, यजन्ते श्रद्धयान्विताः|
## तेषां(न्) निष्ठा तु का कृष्ण, सत्त्वमाहो रजस्तमः||17.1||

अर्जुन बोले - हे कृष्ण ! जो मनुष्य शास्त्र-विधि का त्याग करके श्रद्धापूर्वक (देवता आदि का) पूजन करते हैं, उनकी निष्ठा फिर कौन-सी है? सात्त्विकी है अथवा राजसी-तामसी

**विवेचन** - अर्जुन ने श्रीभगवान् से पूछा कि जो मनुष्य शास्त्र का विचार नहीं करते किन्तु श्रद्धा से युक्त हैं और वे शास्त्रविधि को त्यागकर श्रद्धा से युक्त होकर देवादि का पूजन करते हैं, उनकी निष्ठा कैसी होगी? वह सात्त्विक होगी? राजसी होगी या फिर तामसी होगी?

प्रायः श्रद्धा को हम अन्धविश्वास (Blind Faith) समझते हैं।

**श्रद्धा = श्रद् + धा**
**श्रद् अर्थात् सत्य, धा अर्थात् मार्ग**
**श्रद्धा का अर्थ है - सत्य की ओर जाने वाला मार्ग।**

**श्रद्धा का विलोम है शङ्का अर्थात् जो सत्य की ओर नहीं ले जाता।**

**जहाँ श्रद्धा होगी वहाँ शङ्का नहीं होगी। जहाँ अश्रद्धा होगी वहाँ शङ्का होगी। ये दोनों एक साथ नहीं होते है।**

मानस में सती प्रसङ्ग आता है –

त्रेतायुग में एक बार भगवान् शिवजी सती माता के साथ अगस्त्य मुनि जी के आश्रम में पधारे।

**एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥**
**संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥**

अगस्त्य मुनि ने सतीजी और भगवान् शिवजी का श्रद्धापूर्वक स्वागत - पूजन किया।

भगवान् शङ्कर को रामकथा प्रिय है। श्रोता लिए मिल जाए तो वे वक्ता बन जाते हैं या वक्ता मिल जाए तो श्रोता बनकर रामकथा सुनने पहुँच जाते हैं। उन्होंने अगस्त्य मुनि से रामकथा सुनाने का आग्रह किया।

अगस्त्य मुनि बोले कि स्वयं शिवजी को भगवान् की कथा सुनाना और कहना, इससे उत्तम क्या बात हो सकती है! उन्होंने कई दिनों तक प्रेम से राम कथा सुनायी -

**रामकथा मुनि बर्ज बखानी। सुनी महेश परम रुचि मानी।।**
**रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई।।**
**कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥**

शिवजी ने कई दिन आश्रम में रहकर प्रेम से रामकथा सुनी लेकिन सती का मन कथा में नहीं लगा। उन्हें लगा कि हमारे पतिदेव तो बावले हैं। ये स्वयं संसार के ईश्वर हैं और एक ऋषि के पास आकर किसी और की कथा सुन रहे हैं।

सती ने रामकथा में श्रद्धा नहीं दिखाई। कथा समाप्त होने पर दोनों ने अगस्त्य मुनि से विदा ली।

**मुनि सन बिदा मांगी त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी।।**

आरम्भ में तुलसीदास जी ने माता सती को सम्मानपूर्वक जगत् जननी के रूप में सम्बोधित किया किन्तु बाद में श्रद्धा ना होने के कारण उन्हें दक्षकुमारी कहा।
आते समय सती जननी भवानी के नाम से सम्बोधित हैं, जाते समय दक्षकुमारी, दक्ष की पुत्री कहा गया है।

शिवजी राम नाम की महिमा का गुणगान गाते जा रहे हैं और सती को यह सब असामान्य लग रहा था। उन्हें लग रहा है कि त्रिलोकी के देव महादेव भगवान् शङ्कर रामजी की स्तुति क्यों कर रहे हैं।

जब वे कथा सुनकर चले तो उस समय श्रीभगवान् का रामावतार हुआ है। सीताजी का अपहरण हुआ है। भगवान् श्रीराम सीता अपहरण के पश्चात विरह से व्याकुल होकर उन्हें लक्ष्मण जी के साथ वन-वन खोज रहे थे।

दूर से शिवजी ने रामजी को देखा तो उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। मन में आया कि रामजी से बात करें। उन्हें लगा कि इस समय भगवान् लीला कर रहे हैं।

**संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा॥**
**भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी।।**

इसलिए उचित समय न जानकर उन्होंने जय सच्चिदानन्द! जय सच्चिदानन्द! कहकर दूर से ही श्रीरामजी को प्रणाम किया।

**जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥**

सती पहले से ही संशय में थी। सती को लगा कि एक साधारण मनुष्य को देखकर मेरे पति प्रणाम करते हुए जय सच्चिदानन्द कर रहे हैं। वह वहाँ पत्नी के वियोग में रोते हुए पत्तियों से, फूलों से, पेड़ों से, मृगों से पूछ रहे हैं कि क्या तुमने सीता जी को देखा? यह देखकर सती को क्षोभ हुआ और उनसे रहा नहीं गया।

**सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥**

जहाँ श्रद्धा होगी वहाँ शङ्का नहीं होगी। जहाँ अश्रद्धा होगी वहाँ शङ्का होगी। उनके मन में श्रद्धा का क्षरण और अशङ्का का जागरण हुआ।

**संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥**

उन्होंने कहा कि पूरा जगत आपकी वन्दना करता है। सुर, नर, मुनि सभी आपको शीश नवाते हैं और आपको लगता है कि ये भगवान् के अवतार हैं। आप सबसे बड़े हैं फिर भी आप एक राजपुत्र को देखकर सच्चिदानन्द कहकर प्रणाम रहे हैं।

शिवजी ने कहा कि "तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए, ये स्वयं सच्चिदानन्द परमात्मा हैं। हम जिनकी कथा सुनकर आए हैं, ये वही परम ब्रह्म परमात्मा हैं।

**सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।।**

तुम मान लो कि ये मेरे इष्ट भगवान् श्रीराम हैं। सती नहीं मानी और तर्क करती रहीं। शिवजी ने कहा कि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं है तो तुम उनकी परीक्षा ले लो।

**जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥**
**तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥**
**जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी॥**
**चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौं का भाई॥**

सती ने कहा ठीक है, मैं अभी परीक्षा लेकर आती हूँ।

शिवजी ने सावधान किया कि ध्यान रखना! विवेक से काम लेना। कोई गड़बड़ मत कर देना। वे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। शिवजी ने मन में सोचा कि आज सती का कल्याण नहीं होगा। मेरे कहने पर भी इसका संशय नहीं जा रहा है, विधान सती के विपरीत है।

सती विचार करने लगीं कि किस प्रकार परीक्षा ली जाए। सती ने विचार किया कि वे सीता का रूप बनाकर रामजी के समक्ष जाएँगी। भगवान् शिव सती की सोच से दुखी होकर ध्यानस्थ हो गए। वे समझ गए कि सती का नाश निश्चित है। **जो श्रद्धा नहीं रखता उसका नाश निश्चित है।**

**होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥**
**अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा।।**

शिवजी ध्यानस्थ होकर श्रीभगवान् का स्मरण करने लगे। सती सीता जी का रूप धारण कर वन में राम जी के मार्ग में आगे चलने लगीं। यह देखकर लक्ष्मणजी आश्चर्यचकित हो गए कि सीताजी के रूप में सती क्या कर रही हैं?

**लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा॥**
**कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा।**

सती के पास आते ही भगवान् श्रीराम ने सती रूप को पहचान कर प्रणाम किया। पिता सहित अपना परिचय देकर पूछा कि वृषकेतु, नन्दी की सवारी करने वाले, शिवजी कहाँ हैं? माता आप यहाँ वन में अकेली क्यों हैं?

**जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥**
**कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतु॥**

सती स्तब्ध होकर सोचने लगीं कि ये तो मुझे पहचान गए।

**राम बचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति संकोचु।**
**सती सभीत महेस पहिं, चलीं हृदयँ बड़ सोचु॥**

वे लज्जित होकर भगवान् शिव के पास जाने के लिए मुड़ीं कि अब वही मुझे बचाएँगे।

**मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना॥**
**जाइ उतरु अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥**
**जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥**
**सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता॥**

राम जी सती के हृदय की बात समझ रहे थे। उन्होंने सोचा कि यह परीक्षा लेने आयी हैं तो थोड़ी लीला करता हूँ।

भगवान् श्रीराम के प्रभाव से सती को वन की चारों दिशाओं के हर मार्ग पर राम, लक्ष्मण और जानकी दिखाई देने लगे। साथ ही सती ने देखा कि सभी देवी- देवता, भगवान् शिव स्वयं भी इन तीनों की सेवा कर रहे हैं, वन्दना कर रहे हैं। सती यह देखकर अचेत हो गईं। चेतना आने पर देखा कि वहाँ कुछ नहीं है। रामजी के प्रभाव को प्रणाम करके सती शिवजी के पास पहुँची।

उन्होंने शिवजी से झूठ बोला कि आपकी बात पर विश्वास करके मैंने कोई परीक्षा नहीं ली। शिवजी ने ध्यान किया और बोले कि रामजी मेरे परमपिता हैं और जानकी मेरी माँ हैं। तुमने माँ का रूप धर लिया इसलिए तुम मेरी पत्नी नहीं हो सकतीं। यह कहकर शिवजी ने सती को पत्नी रूप में त्याग दिया। देवताओं ने शिवजी पर पुष्प वर्षा की।

कुछ समय पश्चात् सती के पिता दक्ष के घर में एक यज्ञ हुआ। सती ने देखा कि सारे देवता यज्ञ में जा रहे हैं। अहङ्कारवश दक्ष स्वयं को भगवान शिव से श्रेष्ठ मानता था। उसने अपनी जामाता और पुत्री को इस यज्ञ में आमन्त्रित नहीं किया।

भगवान् शिव के मना करने के बाद भी सती यज्ञ में भाग लेने पहुँच गईं। वहाँ पर उन्होंने देखा कि दक्ष ने अपने जामाता शिवजी को अपमानित करने के लिए आहुति में शिवजी का भाग नहीं निकाला। शिवजी के इस अपमान को देखकर सती ने क्रोध में आकर यज्ञ की अग्नि में आत्मदाह कर लिया और दक्ष के यज्ञ को नष्ट कर दिया।

क्रोध में भरकर भगवान शिव ने यज्ञस्थल पर पहुँचकर सती माता के कलेवर को उठा लिया। सती माता के अङ्ग जहाँ-जहाँ भी गिरे, वहाँ शक्तिपीठ बन गए।

इसके बाद अगले जन्म में सती ने राजा हिमालय के घर पार्वती के रूप में जन्म लिया। नारद जी ने पार्वती को उपदेश दिया, पूर्व जन्म की स्मृति दिलाई और उन्हें उनका प्रण स्मरण करवाया।

सती ने नारद जी को गुरु रूप में स्वीकार किया। उन्होंने भगवान् शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए कठोर तप किया। पहले पत्ते खाकर रहती थीं, फिर पत्ते खाना बन्द करके अपर्णा बनीं।

फिर छह -छह महीने में एक बार हवा खाकर तप किया। हजारों वर्षों की तपस्या के बाद माँ पार्वती ने शिवजी को पति रूप में प्राप्त कर लिया।

पार्वती ने शिवजी से कहा जब मैंने सन्देह किया तो मेरा नाश हुआ और भगवान् शिव से दूर हो गई। श्रद्धा रखी तो पार्वती रूप में शिवजी को प्राप्त कर लिया। अब मैं श्रद्धावान हूँ मुझे रामकथा सुनाइए।

शिवजी ने देखा कि पार्वती श्रद्धापूर्वक बैठी हैं तो उन्होंने रामकथा कही। वही रामकथा स्वामी गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के रूप में लिखी।

मङ्गलाचरण में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं –

**भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।**
**याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम् ॥**

**श्रोता श्रद्धा और वक्ता विश्वास का प्रतीक है।**

**गुरु विश्वास और शिष्य श्रद्धा का प्रतीक है। ऐसा होने पर ही जीवन फलता है।**

गुरु में विश्वास होना चाहिए कि वह जो कहेंगे, वही सही है। गुरु जो कहेंगे वही सही है ऐसी श्रद्धा शिष्य के मन में होनी चाहिए। श्रद्धा और विश्वास का संयोग होने से गुरु शिष्य की परम्परा फलीभूत होती है।

श्रद्धा और विश्वास में अन्तर समझते हैं।

**दूसरे के वचनों पर विश्वास रखकर मानना, आप्त वचनों को मानना। शास्त्र में पढ़ा, गुरु से सुना उसे विश्वासपूर्वक मानना – यह श्रद्धा है।**

**जब स्वयं के अनुभव में आ गया - यह विश्वास है।**

शिवजी कहते हैं -

**उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत् सब सपना॥**

श्रद्धा के कारण ही सभी कार्य होते हैं।

**17.2**

**श्रीभगवानुवाच**
**त्रिविधा भवति श्रद्धा, देहिनां(म्) सा स्वभावजा|**
**सात्त्विकी राजसी चैव, तामसी चेति तां(म्) शृणु||17.2||**

श्री भगवान बोले - मनुष्यों की वह स्वभाव से उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्त्विकी तथा राजसी और तामसी - ऐसे तीन तरह की ही होती है, उसको (तुम) मुझसे सुनो।

**विवेचन** - श्रीभगवान् ने अर्जुन से कहा कि मनुष्यों की शास्त्रीय संस्कारों से रहित केवल स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी तीनों प्रकार की ही होती है। उसको तू मुझसे सुन।

**श्रीभगवान् कहते हैं कि श्रद्धा तीन प्रकार की होती है-**
स्वभावजा
सङ्गता
शास्त्रजा

**1. स्वभावजा श्रद्धा -**
मैं जिस घर में पैदा हुआ, जिस जाति-कुल में पैदा हुआ, जिन संस्कारों के साथ पैदा हुआ, उसकी परम्परा वंशानुगत हो गई, (genes में आ गई)। वे स्वभाव में स्वतः ही आ जाती हैं। जिस घर में हमारा जन्म हुआ है, उस घर की परम्परा के अनुसार हमारे अन्दर श्रद्धा जागृत हो जाती है। वह स्वभावजा श्रद्धा है।

कई लोग शाकाहारी हैं क्योंकि उन्होंने ऐसे घर में जन्म लिया जहाँ शाकाहार ही खाया जाता था। ऐसे लोग माँस नहीं खाते पर अण्डे वाला केक खा लेते हैं। इनकी श्रद्धा स्वभावजा है।
सामने माँस आएगा तो नहीं खा सकेंगे। स्वभाव से शाकाहारी हैं।

**2. सङ्गजा श्रद्धा** -
हम जिन लोगों के साथ रहते हैं, उन लोगों के कारण सङ्गजा श्रद्धा उत्पन्न होती है।
हमारे जीवन में बहुत से परिवर्तन उनके कारण आते हैं
जो हमारे साथ रहते हैं,
हम जिस वातावरण में रहते हैं,
जिन पुस्तकों को पढ़ते हैं,
जिनके कारण हमको किसी विषय में श्रद्धा आती है।

सङ्ग से लोग बदल भी जाते हैं। अच्छे वातावरण में खराब लोग अच्छे हो जाते हैं और बुरे वातावरण में अच्छे लोग बिगड़ जाते हैं।

**3. शास्त्रजा श्रद्धा-**

शास्त्रों को पढ़-सुनकर उत्पन्न होने वाली श्रद्धा शास्त्रजा श्रद्धा है। गीता, रामायण, महाभारत पढ़ने से इस श्रद्धा का निर्माण होता है।

**शास्त्र विधि का त्याग तीन कारणों से होता हैं -**
**1. अज्ञता**
**2. उपेक्षा**
**3. विरोध**

**1.अज्ञता/अज्ञानता** -
शास्त्रों में क्या लिखा है, उससे हम अनभिज्ञ हैं। हमें पता ही नहीं।
पण्डितजी ने यज्ञ करने के लिए आम की लकड़ी लाने के लिए कहा। हम बाजार में जाकर अज्ञानता के कारण लकड़ी के बारे में कुछ भी पूछे बिना कोई भी लकड़ी खरीद कर ले आते हैं - यह अज्ञता है।
यह अपराध क्षम्य है क्योंकि अज्ञानता के कारण अपराध हुआ।

**अज्ञता से उत्पन्न शास्त्र विधि की उपेक्षा क्षम्य होती है।**

**2. उपेक्षा –**
पता तो है फिर भी "क्या अन्तर पड़ता है" ऐसा भाव रहता है।
पण्डितजी ने कहा यज्ञ करना है, तो आम की लकड़ी ले आइए। हम बाजार में जाकर आम की लकड़ी का दाम अधिक है, यह सोचकर, जानते हुए भी कम मूल्य वाली कोई भी अन्य लकड़ी खरीद कर ले आते हैं।
शास्त्र विधि के त्याग का कारण मन में उपेक्षा का भाव है।

**उपेक्षा से की गयी शास्त्र विधि फलहीन हो जाती है।**

**3. विरोध -**
ये क्यों करना है? यही क्यों करना है? मैं यह नहीं करूँगा। आम की लकड़ी से ही क्यों हवन करना है, कटहल की लकड़ी से क्यों नहीं? उससे क्या बुरा हो जाएगा?
मैं बहुत ही पढ़ा - लिखा हूँ, मैं श्राद्ध नहीं करता, यह मूर्खों का काम है। मैं नहीं करूँगा, कोई समाज सेवा का कार्यक्रम करूँगा, अनाथ बच्चों की देखभाल करूँगा, गरीबों को खाना खिलाऊँगा, परन्तु श्राद्ध नहीं करूँगा। यह विरोध है।

**यह विरोध जन्य शास्त्र विधि का त्याग है। यह पाप है। इससे नाश होगा।**

**विरोध से की गयी शास्त्र विधि का त्याग दण्डनीय अपराध है ।**

श्रीभगवान् कहते हैं कि श्रद्धा भी तीन प्रकार की है-
**सात्त्विकी,**
**राजसी और**
**तामसी**

पूर्ण रूप से कुछ भी सात्त्विक या तामसिक नहीं होता।
जैसे हम कहते हैं कि सुबह हो गयी, दोपहर हो गयी, सन्ध्या हो गई, रात्रि हो गई। केवल सुबह, केवल दोपहर, केवल शाम और केवल रात नहीं होती।

सुबह पाँच बजे के समय रात्रि का अन्तिम प्रहर और दिन का प्रथम प्रहर मिल रहा होता है।
जिसको दोपहर कहते हैं उस समय सुबह का अन्तिम प्रहर और अपराह्न का प्रथम प्रहर मिल रहा होता है।

जिसको सायं कहते हैं उस समय दोपहर का अन्तिम प्रहर और रात्रि का प्रथम प्रहर मिल रहा होता है।
जिसको रात्रि बोलते हैं उस समय सायं का अन्तिम प्रहर और सुबह का प्रथम प्रहर मिल रहा होता है।

पूर्ण रूप (Absolute) कुछ नहीं होता, उसके साथ अगला-पिछला जुड़ा होता है।

ऐसे ही सौ प्रतिशत सत्त्व, सौ प्रतिशत रज और सौ प्रतिशत तम नहीं होता। सब में बाकी अंश मिले होते हैं। सत्त्व में रज मिला हुआ दिखाई देगा। रज में तम मिला हुआ दिखाई देगा।

**सत्त्व के पूर्व में त्रिगुणातीत है, उत्तर में रजोगुण है। रजोगुण के पूर्व में सत्तोगुण है उत्तर में तमोगुण है। तमोगुण के पूर्व में रजोगुण है और उत्तर में तमोगुण है।**

किसी में मात्र सत्त्व हो, तम पूरी तरह समाप्त हो जाए, ऐसा नहीं होता। ना ही कुछ भी सौ प्रतिशत है, न ही कुछ भी शून्य है। सभी में ये तीनों अलग-अलग अनुपात में मिले होंगे।
बात प्रधानता की है। किसकी प्रधानता अधिक है।

**अपने को अथवा किसी अन्य को हम सात्त्विक, राजसिक या तामसिक तभी बोलेंगे जब उसमें उस गुण की प्रधानता हो।**

**17.3**

**सत्त्वानुरूपा सर्वस्य, श्रद्धा भवति भारत|**
**श्रद्धामयोऽयं(म्) पुरुषो, यो यच्छ्रद्धः(स्) स एव सः||17.3||**

हे भारत ! सभी मनुष्यों की श्रद्धा अन्तःकरण के अनुरूप होती है। यह मनुष्य श्रद्धामय है। (इसलिये) जो जैसी श्रद्धावाला है, वही उसका स्वरूप है अर्थात् वही उसकी निष्ठा (स्थिति) है।

**विवेचन** – श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है। ये पुरुष श्रद्धामय हैं, इसलिये जो जैसी श्रद्धावाला है, वह वही होता है।

श्रीभगवान् नया सिद्धान्त लेकर आते हैं-

**यो यच्छ्रद्धः स एव सः। जैसी तुम्हारी श्रद्धा होती है वैसे ही तुम होते हो।**

यदि बहुत अधिक फिल्में देखने में रुचि हो तो लोग कहते हैं कि वह बहुत पिक्चर बाज है।
कोई खाने का अभिलाषी होता है तो लोग कहते हैं कि वह बहुत चटोरा है।
यदि किसी को मोबाइल में खेलने में रुचि है तो  लोग उसे कहेंगे कि मोबाइल का कीड़ा है, गेमर है।

एक बार एक राज्य में एक श्रेष्ठ मूर्तिकार था। वह पत्थरों से बात करता, पत्थर उससे बात करते थे। पत्थर से बात कर-कर के वह उनका स्वभाव जान गया था।

वहाँ के राजा ने सोचा कि इस मूर्तिकार से अपने राज्य में ऐसा मन्दिर बनवाया जाए जिसके समान आस-पास के कई राज्यों में कोई मन्दिर न हो। उसने मूर्तिकार को बुलाया।|

राजा ने कहा कि दैव प्रेरणा से मेरे मन में ऐसी भावना आयी है कि हमारे राज्य में सबसे सुन्दर मन्दिर बने और मैं चाहता हूँ कि वह मन्दिर तुम बनाओ।

मूर्तिकार ने कहा कि 'मैं बना तो सकता हूँ परन्तु अच्छा पत्थर भी मिलना चाहिए।' राजा ने कहा कि चिन्ता मत करो। तुम्हें जैसा पत्थर चाहिए, मुझे बताओ। मेरे सैनिक दूर-दूर जाकर वैसा पत्थर ढूँढ कर ले आएँगे।

मूर्तिकार के कहे अनुसार सैनिक जहाँ-तहाँ से सैकड़ों पत्थर ले आए। मूर्तिकार ने उन पत्थरों में से चार पत्थरों को चुनकर अपने कमरे में रख लिया।

उसने पहली शिला को स्पर्श करके प्रणाम किया और उस पर छेनी चलाना आरम्भ किया। पाँच मिनट में आवाज़ आई, अरे मूर्तिकार! मुझे छोड़ो। मुझ से चोट नहीं सहन की जाएगी। मैं तुम्हारी मूर्ति नहीं बन पाऊँगा। मुझे ऐसे ही छोड़ दो।

मूर्तिकार ने उस पत्थर को किनारे रख दिया।

दूसरा पत्थर उठाकर उस पर छेनी लगानी आरम्भ की और दो महीने तक चिकना करके उसे आकार दिया। दो महीने बाद उस पत्थर से भी आवाज आई कि अब रहने दो, मुझसे सहन नहीं होता। मुझे तुम्हारी मूर्ति नहीं बनना है, तुम मुझे छोड़ दो।

मूर्तिकार ने उस पत्थर को भी किनारे कर दिया।

तीसरे पत्थर को चिकना करके आकार देना आरम्भ किया। छह माह बाद वह पत्थर भी बोला कि मूर्तिकार! मैं सोच तो रहा था कि तुम जैसा चाहोगे, बन जाऊँगा परन्तु अब यह छेनी की चोट नहीं सही जा रही है।

मूर्तिकार ने उस पत्थर को भी छोड़ दिया।

उसने चौथे पत्थर का स्पर्श किया तो उसमें मूर्तिकार को अद्‌भुत अनुभूति मिली। पत्थर से आवाज आई कि मूर्तिकार! सबसे अन्त में तुमने मुझे छुआ। मैं तो तड़प रहा था कि तुम मुझे कब स्पर्श करोगे? मैं तुम्हारी कला के लिए समर्पित हूँ। तुम मुझे जैसा गढ़ना चाहते हो, वैसा गढ़ लो। मैं तुम्हारी सेवा में प्रस्तुत हूँ। तुम मुझे वही बनाओ जो तुम बनाना चाहते हो।

मूर्तिकार प्रसन्न हो गया। दो वर्ष तक वह दिन-रात उस पत्थर पर कार्य करता रहा। दो वर्ष बाद श्रीभगवान् द्वारिकाधीश का विलक्षण विग्रह उस पत्थर में प्रकट हुआ।

मूर्तिकार ने उस विग्रह को प्रणाम किया। पत्थर से फिर से आवाज़ आयी, तू मुझे क्यों प्रणाम करता है? मैं तो तेरे लिये समर्पित हूँ।

मूर्तिकार ने कहा कि तेरे समर्पण ने तुझे पत्थर से ईश्वर बना दिया। राजा ने भी उस मूर्ति को देखकर भाव-विह्वल हो दण्डवत प्रणाम किया।

भव्य मन्दिर का निर्माण शुरू हुआ। गर्भगृह में भगवान् की स्थापना हुई,। पूरे राज्य में उत्सव हुआ। दूर-दूर के राज्यों से लोग उस मूर्ति के दर्शन करने आते, सुन्दर मालाएँ, सुन्दर आभूषण लाते, छप्पन भोग लगाते।

**श्रद्धा एक साधारण पत्थर में ईश्वर को प्रकट कर देती है तो फिर मनुष्यों की तो क्या बात है।**

जिस पत्थर ने कहा था, मुझे मत छुओ, उसे तोड़-तोड़ कर मार्ग में रोड़ी बनाकर बिछा दिया गया।

जिस पत्थर पर दो माह काम करके चिकना किया गया था, उसे मूर्तिकारों ने सीढ़ियों में लगा दिया।

जिस पत्थर पर छह माह काम किया गया था, उसे मूर्तिकारों ने शेर, हाथी बनाकर मन्दिर के स्तम्भों में लगा दिया।

चौथा पत्थर अपने समर्पण से भगवान् बन गया। उसे तरह-तरह के भोग लगाए जाते, अमूल्य पुष्पों से उसका श्रृङ्गार होता। अब वह साधारण पत्थर नहीं रह गया था। वह साक्षात् भगवान् बन गया था।

चारों पत्थरों में एक रोड़ी बना, एक सीढ़ी बना, एक स्तम्भ बना और एक ईश्वर बन गया।

समर्पण की श्रद्धा ने साधारण पत्थर को भी भगवान् बना दिया।

**जिसका जैसा समर्पण भाव होता है, उसकी वैसी ही गति होती है। यो यच्छ्रद्धः स एव सः।**

हम सब का जीवन ऐसा ही है। हम अपने जीवन को कहाँ समर्पित कर रहे हैं? यह ध्यान रखना चाहिए। जीवन मूल्यवान है।

अपने जीवन को समर्पित करके मनुष्य पूज्य स्वामी गोविन्ददेव गिरिजी जैसा महात्मा भी बन सकता है और परमात्मा भी बन सकता है। पूरी दुनिया जिनको प्रणाम करती है।

हम भाव और तत्त्व की बातें करते हैं पर भोग का कामना करते हैं। कुछ इस जन्म के भोग चाहते हैं और कुछ अगले जन्म के भोग चाहते हैं।

**17.4**

## यजन्ते सात्त्विका देवान्, यक्षरक्षांसि राजसाः|
## प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये, यजन्ते तामसा जनाः||17.4||

सात्त्विक मनुष्य देवताओं का पूजन करते हैं, राजस मनुष्य यक्षों और राक्षसों का और दूसरे (जो) तामस मनुष्य हैं, (वे) प्रेतों (और) भूतगणों का पूजन करते हैं।

**विवेचन** – श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि सात्त्विक पुरुष देवों को पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसों को पूजते हैं तथा तामस मनुष्य प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं।

सबके लक्ष्य, सबके ईष्ट अलग-अलग हैं।

कोई सुन्दर वर के लिए सोमवार का व्रत रखता है।
शक्ति के लिए मङ्गलवार को श्रीहनुमानजी का व्रत रखते हैं, उपासना करते हैं। कोई धन के लिए बृहस्पतिवार के दिन उपासना करता है।
कोई सङ्कट निवारण के लिए शनि देव की उपासना करता है।

सबका स्थूल शरीर एक-सा है किन्तु सबका मन अलग-अलग है।

किसी ने पूछा "**पानी रे पानी, तेरा रङ्ग कैसा**"

**पानी ने कहा, "जिसमें मिला दो, लगूँ उस जैसा।"**

पानी का कोई रङ्ग नहीं है, वह जिसमें मिलता है, उसी रङ्ग और उसी आकार में ढल जाता है। हम भी वैसे ही हैं।

सुन्दर गीत है –
तोरा मन दर्पण कहलाए -

**जिसकी जैसी श्रद्धा उसका वैसा मन।**

**जिसका जैसा मन उसका वैसा जीवन।**

**उसके वैसे ही भगवान्।**

उसको वैसे ही भजन अच्छे लगेंगे। सभी को एक प्रकार के भजन अच्छे नहीं लगते। सबके अलग-अलग प्रकार के प्रिय भजन हैं। किसी को तड़क-भड़क वाले भजन अच्छे लगते हैं जैसे माँ मुरादे पूरी कर दे हलवा बाटूँगी या हारे का सहारा बाबा श्याम हमारा आदि।

जिसकी सकाम भक्ति है उनको इस प्रकार के भजन भाते हैं।

कुछ ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि हमें भगवान् से कुछ नहीं चाहिए। बस श्रीभगवान् की सेवा करनी है, प्रेम करना है। उनको अलग प्रकार के भजन, अलग प्रकार की भक्ति और अलग प्रकार के देवता चाहिए।

श्रीभगवान् कहते हैं कि श्रद्धा के अनुसार सबके इष्ट बदलते हैं।

**इस मन को जिस वृत्ति में लगाएँगे, हमारा स्वरूप वैसा ही हो जाएगा।**

**17.5**

**अशास्त्रविहितं(ङ्) घोरं(न्), तप्यन्ते ये तपो जनाः|**
**दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः(ख्), कामरागबलान्विताः||17.5||**

जो मनुष्य शास्त्रविधि से रहित घोर तप करते हैं; (जो) दम्भ और अहंकार से अच्छी तरह युक्त हैं; (जो) भोग- पदार्थ, आसक्ति

और हठ से युक्त हैं; (जो) शरीर में स्थित पाँच भूतों को अर्थात् पांच भौतिक शरीर को तथा अन्तःकरण में स्थित मुझ परमात्मा को भी कृश करने वाले हैं उन अज्ञानियों को (तू) आसुर निष्ठा वाले (आसुरी सम्पदा वाले) समझ। ( 17.5-17.6)

**विवेचन** – श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि जो मनुष्य शास्त्रविधि से रहित केवल मनःकल्पित घोर तप को तपते हैं तथा दम्भ और अहङ्कार से युक्त एवं कामना, आसक्ति और बल के अभिमान से युक्त हैं।

बहुत लोग ऐसे भी होते हैं जो शास्त्रों का पालन नहीं करते, शास्त्र का विचार नहीं करते। अपनी मनःकल्पित भक्ति करते हैं, तपस्या करते हैं। उनसे पूछिए कि इस प्रकार कहाँ लिखा है? किसने बताया? तो वे कहते हैं कि मुझे स्वयं भगवान् ने बताया है।

ऐसे मनुष्य कामना, आसक्ति और बल के अहङ्कार से युक्त हैं।

**17.6**

**कर्शयन्तः(श्) शरीरस्थं(म्), भूतग्राममचेतसः|**
**मां(ञ्) चैवान्तः(श्) शरीरस्थं(न्), तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्||17.6||**

**विवेचन** – श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि जो शरीररूप से स्थित भूत समुदाय को और अन्तःकरण में स्थित मुझ परमात्मा को कृश करनेवाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुर-स्वभाव वाले जान।

शास्त्र से युक्त और श्रद्धा से युक्त तप, मन और तन दोनों को प्रसन्नता प्रदान करते हैं।

शास्त्र विहीन और श्रद्धा विहीन तप से मन और तन दोनों को कष्ट मिलता हैं और उनके आस-पास वाले भी प्रभावित होते हैं।

उन्हें पूजा-शास्त्रों से कोई प्रयोजन नहीं होता। मूर्ति किराए पर लाकर अनर्गल भजन बजाते हैं। चन्दा माँगकर धन एकत्र करते हैं। उल्टे-पुल्टे, भोण्डे गाने बजाकर अश्लील नृत्य करते हैं।

शास्त्र विधि का त्याग करके वे उसे भक्ति कहते हैं।

**17.7**

**आहारस्त्वपि सर्वस्य, त्रिविधो भवति प्रियः|**
**यज्ञस्तपस्तथा दानं(न्), तेषां(म्) भेदमिमं(म्) शृणु||17.7||**

आहार भी सबको तीन प्रकार का प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप (और) दान (भी तीन प्रकार के होते हैं अर्थात् शास्त्रीय कर्मों में भी गुणों को लेकर तीन प्रकार की रुचि होती है,) (तू) उनके इस भेद को सुन।

**विवेचन** – श्रीभगवान् कहते हैं कि जैसे श्रद्धा तीन प्रकार की होती है वैसे ही अपनी-अपनी वृति के अनुसार भोजन भी तीन प्रकार का होता है और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकार के होते हैं। इसको भेद को पृथक्-पृथक् तू मुझसे सुन।

श्रीभगवान् व्यावहारिक और शास्त्रीय श्रद्धा का समन्वय करते हैं। भगवान् कह रहे हैं कि अर्जुन आहार तो सबको पसन्द ही है इसलिए मैंने सबसे पहले आहार के बारे में बताया।

श्रीभगवान् ने सबसे पहले आहार के बारे में बताया। हम में से कोई भी ऐसा नहीं है जिसे खाना पीना पसन्द ना हो।

उसके बाद यज्ञ, दान और तप के विषय में बताते हैं। कुछ उदाहरण देकर भगवान् हमें समझाना चाहते हैं कि अच्छी बातों में

भी सात्विक, राजसिक और तामसिक होती हैं।

**17.8**

**आयुः(स्) सत्त्वबलारोग्य, सुखप्रीतिविवर्धनाः|**
**रस्याः(स्) स्निग्धाः(स्) स्थिरा हृद्या, आहाराः(स्) सात्त्विकप्रियाः||17.8||**

आयु, सत्त्वगुण, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता बढ़ाने वाले, स्थिर रहने वाले, हृदय को शक्ति देने वाले, रसयुक्त (तथा) चिकने - (ऐसे) आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ सात्त्विक मनुष्य को प्रिय होते हैं।

**विवेचन** - सात्त्विक आहार के विषय में बताते हुए श्रीभगवान कहते हैं कि जो भोजन आयु, बल, बुद्धि और आरोग्य को बढ़ाने वाले हैं, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले हैं; वे सात्त्विक आहार हैं। जो पदार्थ रसयुक्त, स्थिर प्रकृति के हों अर्थात् दीर्घकाल तक प्रभावी हों, चिकनाई युक्त हों, ऐसे आहार सात्त्विक होते हैं। ये पदार्थ सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।

श्रीगुरू नानकदेव जी का दृष्टान्त है।
गुरु नानक जी के दो शिष्य थे, बाला और मरदाना। गुरु नानक जी का नियम था कि वह कहीं भी जाते थे तो गाँव के भीतर नहीं जाते थे। वे गाँव के बाहर ही ठहरते थे और एक रात से अधिक भी नहीं रुकते थे। यदि कोई गाँव से आकर भोजन दे जाता था तो खा लेते थे नहीं तो भूखे ही सो जाते थे। गाँव में जाकर भिक्षा नहीं माँगते थे।

चार दिन से वे जहाँ-जहाँ गाँवों में घूम रहे थे, वहाँ उनको किसी ने भिक्षा नहीं दी। वे भूखे ही सो गए थे। जब वे एक गाँव में पहुँचे तो किसी ने जमीन्दार को सूचना दी। जमीन्दार ने खीर, पूरी और पकवान बनवाकर तीन थालियों में भोजन लगाकर उनके पास पहुँचा दिया।

दो दिन के भूखे बाला और मरदाना चाँदी की थाली में मिष्ठान्न और गर्म भोजन देख प्रसन्न होकर बोले कि गुरुजी भोजन पा लेते हैं। गुरु जी ने कहा- थोड़ा रुको। बाला और मरदाना ने फिर पूछा कि भोजन पा लें तो गुरुजी बोले कि अभी थोड़ी देर और रुको।

कुछ समय बाद छोटी सी लड़की भागती हुई आई और बोली महाराज! माँ ने रोटी भेजी है, कहा कि साधु आए हैं रोटी दे दो। मैं आपके लिए वही लेकर आई हूँ।

गुरु नानकदेव जी उस कन्या को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि माँ ने रोटी भेजी है तो दे दो। उस लकड़हारे की बेटी ने दुपट्टे में बँधी रोटियाँ खोलकर दो-दो रोटियाँ गुरु नानक जी, बाला और मरदाना के हाथों में रख दी।

गुरु नानकदेव जी बोले माँ को आशीर्वाद देना और तुम्हारा कल्याण हो।

बाला और मरदाना हैरान हो गए कि खीर, पूरी, पकवान को छोड़ कर गुरुजी सूखी रोटी खाने के लिए कह रहे हैं। उन्होंने इसका कारण पूछा।
गुरु नानक जी ने एक रोटी चाँदी की थाली से उठाई और एक रोटी लकड़हारे की लड़की वाली ली और दोनों को जोर से निचोड़ दिया।
लकड़हारे की रोटी से दूध और जमीन्दार की रोटी से खून बहने लगा। दोनों शिष्य बहुत घबरा गए।

गुरुजी बोले यह तो पाप की रोटी है। मैं इसे खाने को मना कर रहा था क्योंकि जमीन्दार बहुत अन्यायी है।
हमें यह रोटी भी इसलिए दी है कि साधु-महात्माओं की कृपा से उसके पाप कट जाएँ। इसलिए इनका भोजन हमें नहीं खाना चाहिए। इसने गाँव के लोगों पर अत्याचार करके उनका धन लूटा है।

**अन्याय की कमाई से बना हुआ भोजन रक्त के समान विषैला है।**

**लकड़हारे की रोटी शुद्ध धन की कमाई की है। इसकी रोटी दूध के समान शुद्ध है।**

**भाव दृष्टि, तत्व दृष्टि और स्थूल दृष्टि - तीनों दृष्टियों से लकड़हारे की रोटी शुद्ध है।**

**17.9**

**कट्वम्ललवणात्युष्ण, तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः|**
**आहारा राजसस्येष्टा, दुःखशोकामयप्रदाः||17.9||**

अति कड़वे, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, अति रूखे और अति दाह कारक आहार अर्थात् भोजन के पदार्थ राजस मनुष्य को प्रिय होते हैं, (जो कि) दुःख, शोक और रोगों को देने वाले हैं।

**विवेचन** - श्रीभगवान् कहते हैं कि बहुत कड़वे, खट्टे, दाहकारक, लवणयुक्त, बहुत गर्म, अधिक तीखे और रूखे भोजन के पदार्थ केवल दुःख, चिन्ता और रोगों को बढ़ाने वाले हैं।

श्रीभगवान् ने पहले सात्त्विक आहार का परिणाम बताया फिर उसके पदार्थों का वर्णन किया।

राजसी आहार में श्रीभगवान् ने पहले भोजन का प्रकार बताया, फिर परिणाम बताया।

**सात्त्विक वृत्ति वाले पुरुष पहले परिणाम का विचार करते हैं, फिर भोजन करते हैं।**

**राजसी वृत्ति वाले पुरुष पहले स्वाद का विचार करते हैं, फिर परिणाम का विचार करते हैं।**

यदि भोजन रुचि का नहीं है तो बाहर से मँगा लेते हैं। वे इसका विचार करते हैं कि भोजन में क्या स्वादिष्ट है?

**17.10**

**यातयामं(ङ्) गतरसं(म्), पूति पर्युषितं(ञ्) च यत्|**
**उच्छिष्टमपि चामेध्यं(म्), भोजनं(न्) तामसप्रियम्||17.10||**

जो भोजन सड़ा हुआ, रस रहित, दुर्गन्धित, बासी और जूठा है तथा (जो) महान अपवित्र (मांस आदि) भी है, (वह) तामस मनुष्य को प्रिय होता है।

**विवेचन** – श्रीभगवान् कहते हैं कि जो भोजन अधपका, रस रहित, दुर्गन्ध युक्त, बासी और बचा हुआ (उच्छिष्ट) है तथा अपवित्र है। जो बिना स्नान किए बनाया गया हो वह तामसिक आहार है।
ऐसा भोजन तामसी वृत्ति वाले पुरुष को प्रिय होता है।

**तामसी वृत्ति वाला पुरुष परिणाम का विचार नहीं करता, न खाने के पहले ना बाद में।**

हरि नाम सङ्कीर्तन के साथ सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तर आरम्भ हुए।

हरि शरणम्! हरि शरणम्! हरि शरणम्! हरि शरणम्!

**प्रश्नोत्तर**

**प्रश्नकर्ता**- दर्शन भैया
**प्रश्न** - क्या कोई ऐसा श्लोक है, जिसमें बताया गया है कि हमें सभी काम स्वयं करने चाहिए सब कुछ भगवान् पर नहीं छोड़ देना चाहिए? क्या हमें भगवान् के भरोसे नहीं बैठना चाहिए? क्या हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् ही हमें सब कुछ देंगे? कई बार हम देखते हैं कि मन्दिर तोड़े जा रहे हैं या हिन्दुओं पर अत्याचार हो रहे हैं तो भगवान् वहाँ कुछ क्यों नहीं करते?
**उत्तर** - ऐसा कोई श्लोक भगवद्गीता जी में नहीं है, नीति सूत्र में है। श्रीभगवान् ने कहा है-

**"न हि कश्चित्क्षणमपि, जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।**
**कार्यते ह्यवशः(ख्) कर्म, सर्वः(फ्) प्रकृतिजैर्गुणैः॥३.५॥"**

मनुष्य एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता। मनुष्य को सदैव कर्म में निवृत्त रहना चाहिए।

भगवान् कहीं भी कुछ नहीं करते। भगवान् कर्म विहीन हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं कहीं भी कुछ नहीं करता। मैं तो केवल अध्यक्षता करता हूँ।

जैसे आपके शहर में कोई घटना घटती है तो उसमें प्रधानमन्त्री थोड़ी ना कुछ करते हैं। वहाँ पर पुलिस की व्यवस्था की गई है, प्रशासन की व्यवस्था है तो वे ही यह सब देखते हैं। प्रधानमन्त्री हर बात में नहीं हस्तक्षेप करते।

इसी प्रकार भगवान कुछ नहीं करते। बहुत सी दैवीय और राक्षसी शक्तियाँ हैं, जिसके द्वारा सब कुछ नियन्त्रित है।

जो जिस प्रकार का कर्म करेगा, उसे उसी प्रकार से ही फल मिलेगा।
हमें अपना कर्म सही से करते रहना चाहिए। समाज की जिम्मेदारी भी हमारी ही है।

**प्रश्नकर्ता** - भावना दीदी
**प्रश्न** - आपने कहा था कि वृद्ध आश्रम और अनाथ आश्रम में अनाज का दान नहीं देना चाहिए, इसका क्या अर्थ है?
**उत्तर** - मैंने ऐसा कभी नहीं कहा कि अनाथ आश्रम और वृद्ध आश्रम में अनाज का दान ना दें। मेरा सिर्फ यह कहना है कि श्राद्ध का अनाज अनाथ आश्रम में देना शास्त्र विरुद्ध है।

आपको जहाँ भी दान देना है, खूब दीजिए, परन्तु श्राद्ध पक्ष का अन्न आप वहाँ नहीं बाँट सकते। आपको जो भी दान करना है, अलग से करें। श्राद्ध का अनाज वहाँ न दें।

आप अपने जन्मदिन और विवाह वर्षगाण्ठ आदि पर वहाँ भोजन करायें, वह बहुत अच्छी बात है।

यह दान पुण्य यदि आप इस भाव से करते हैं कि इससे मेरा नाम होगा या सब मुझे अच्छा समझेंगे तो यह दान सात्विक नहीं रहता, राजसिक हो जाता है। इसके विषय में हम आगे के श्लोकों में चर्चा करेंगे।

**प्रश्नकर्ता** - गौरी साहु दीदी
**प्रश्न** - हमें श्रीमद्भगवद्गीता जी का पाठ क्या स्नान करके के बाद ही करना चाहिए? स्नान बिना किए पाठ करने से क्या हानि है?
**उत्तर** - यह अपने शुद्धता की बात है। बिना स्नान के पाठ करने से कोई हानि नहीं है परन्तु स्नान करके यदि किया जाएगा तो उसका लाभ ज्यादा मिलेगा।

इसके उपरान्त श्री हनुमान चालीसा पाठ के साथ आज के सुन्दर विवेचन सत्र का समापन हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

**https://vivechan.learngeeta.com/feedback/**

**विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!**
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

---

**जय श्री कृष्ण !**
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

---

**हर घर गीता, हर कर गीता!**
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

**https://gift.learngeeta.com/**

---

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

**https://vivechan.learngeeta.com/**

---

**|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||**
**||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||**